ता. 7.4.2020
Shivanand Das
R.N. College
Pandaul.

चार्वाक का प्रमाण-विज्ञान
Charvaka's Epistemology

भारतीय दर्शन की मुख्य प्रवृत्ति आध्यात्मिक होते हुए भी यहाँ जड़वाद का चित्र देखने को मिलता है। चार्वाक एक जड़वादी दर्शन है, जिसके अनुसार भूत ही चरम सत्ता है तथा जिससे चैतन्य अर्थात मन का आविर्भाव होता है। चार्वाक अत्यन्त ही प्राचीन दर्शन है। अन्य मतों के अलावा विद्वानों के अनुसार 'चार्वाक' शब्द की उत्पत्ति 'चर्व' धातु से हुई है। 'चर्व' का अर्थ चबाना अथवा 'खाना' होता है। इस दर्शन मूल मंत्र है "खाओ, पीओ और मौज करो (Eat, drink and be merry)"। खाने-पीने पर अत्यधिक जोर देने के फलस्वरूप इस दर्शन को 'चार्वाक' नाम से पुकारा जाता है। चार्वाक नास्तिक (Heterodox), अनीश्वरवादी (Atheistic), प्रत्यक्षवादी (Positivist) तथा सुखवादी (Hedonist) दर्शन है। चार्वाक दर्शन की पूर्ण व्याख्या के लिए इसके विभिन्न अंगों, प्रमाण विज्ञान (Epistemology), तत्व विज्ञान (Metaphysics), नीति विज्ञान (Ethics) में ज्ञान-मीमांसा पर विचार अपेक्षित है।

चार्वाक का सम्पूर्ण दर्शन इसके प्रमाण-विज्ञान पर आधारित है। ज्ञान के साधन की व्याख्या करना प्रमाण-विज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। चार्वाक प्रत्यक्ष को ही ज्ञान एक मात्र साधन मानता है। सही ज्ञान को 'प्रमा', ज्ञान के विषय को प्रमेय (object of knowledge) तथा ज्ञान के साधन को प्रमाण कहा जाता है। चार्वाक के अनुसार प्रमा अर्थात यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति प्रत्यक्ष से सम्भव है। यह प्रत्यक्ष को ही एक मात्र प्रमाण मानता है। इस दर्शन की उक्ति है– प्रत्यक्षमेव प्रमाणम् (Perception is the only source of knowledge)।

Scanned with CamScanner

चार्वाक ही एक ऐसा दार्शनिक है जो केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना है। भारतीय चिन्तनधारा में चार्वाक का योगदान अनूठा है।

प्रत्यक्ष का अर्थ होता है, जो आँखों के सामने हो। व्यापक अर्थ में प्रत्यक्ष को वह ज्ञान कहा गया जो इन्द्रियों से प्राप्त हो। हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं- आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ। इन ज्ञानेन्द्रियों से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। आँख से रूप का, कान से शब्द का, जीभ से स्वाद का, नाक से गंध का, त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए तीन तत्वों का रहना आवश्यक है- इन्द्रिय (sense organs), पदार्थ (object) और सन्निकर्ष (contact)। प्रत्यक्ष इन्द्रियों के माध्यम से होता है। पदार्थ के साथ इन्द्रियों का सन्निकर्ष, अर्थात् इन्द्रियों और पदार्थों का संयोग का रहना आवश्यक है। स्वाद का ज्ञान तभी संभव है जब जीभ का वस्तु से सम्पर्क हो। इन्द्रिय और पदार्थ विद्यमान हो और सन्निकर्ष न हो तो प्रत्यक्ष ज्ञान असम्भव है। इसलिए इन्द्रियों और पदार्थों के सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष कहा जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञान निर्विवाद और संदेहरहित है। जो ज्ञान प्रत्यक्ष से प्राप्त होता है उसके लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है इसलिए कहा गया है 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'।

प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानने के फलस्वरूप चार्वाक दर्शन में अन्य प्रमाणों का खंडन हुआ है। यह खंडन प्रत्यक्ष की महत्ता बढ़ाने में सहायक है। चार्वाक के प्रमाण-विज्ञान का यह ध्वंसात्मक पहलू अत्यन्त ही लोकप्रिय है। विभिन्न युक्तियों द्वारा अनुमान और शब्द प्रमाण का खंडन किया गया है और अंततः सिद्ध किया गया है कि प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है।

Scanned with CamScanner

ता.:- 27.4.2020

B.A. II (S)
Shivanand
R.N. College
Pandaul

निष्काम कर्म

गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग कहा जा सकता है। गीता में श्रीकृष्ण मानव को निरन्तर कर्म करने का आदेश देते हैं। गीता की रचना निष्क्रिय और किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्म के विषय में मोहित कराने के उद्देश्य से की गई है। कर्म का अर्थ है आचरण। शील कर्म से ईश्वर को अपनाया जा सकता है। ईश्वर स्वयं कर्मठ है इसलिए ईश्वर तक पहुंचने के लिए कर्ममार्ग अत्यन्त ही आवश्यक है। गीता के समय शुद्धाचरण के अनेक विचार प्रचलित थे। वैदिक-कर्म के मतानुसार मानव वैदिक कर्मों के द्वारा अपने आचरण को शुद्ध कर सकता है। उपनिषद् में कर्म को सत्य प्राप्ति में सहायक कहा गया है। गीता में मानव को कर्म करने का आदेश दिया गया है। अचेतन वस्तु भी अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अतः कर्म से विमुख होना महान मुर्खता है। एक व्यक्ति को कर्म के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। परन्तु उसे कर्म के फलों की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह कर्मों के परिणामों के संबंध में चिन्तनशील रहता है। यदि कर्म के अशुभ परिणाम पाने की आशंका रहती है तब वह कर्म का त्याग कर देता है। इसलिए गीता में निष्काम-कर्म को जीवन का आदर्श बनाने का निर्देश किया गया है। निष्काम-कर्म का अर्थ है, कर्म को बिना किसी फल की अभिलाषा से करना। इसलिए भगवान अर्जुन से कहते हैं:-

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

गीता की रचना यह प्रमाणित करती है कि सम्पूर्ण गीता कर्तव्य करने के लिए मानव को प्रेरित करती है। परन्तु कर्म निष्काम-भाव

Scanned with CamScanner

अर्थात् फल की प्राप्ति की भावना का त्याग करके करना ही परमावश्यक है। दार्शनिकों के मत में गीता कर्मों के त्याग के बदले कर्म में त्याग का आदेश देती है।

गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अनुपम समन्वय है। ईश्वर को ज्ञान से अपनाया जा सकता है, कर्म से अपनाया जा सकता है तथा भक्ति से भी अपनाया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जो मार्ग सुलभ हो वह उसी मार्ग से ईश्वर को अपना सकता है। ईश्वर में सत, चित और आनन्द है। जो ईश्वर को ज्ञान से प्राप्त करना है उसके लिए वह प्रकाश है। जो ईश्वर को कर्म के द्वारा अपनाना चाहते हैं उसके लिए वह शुभ है। जो भावना से अपनाना चाहते हैं उनके लिए वह प्रेम है। इस प्रकार तीनों मार्गों से लक्ष्य ईश्वर से मिलन को अपनाया जा सकता है।

सकाम कर्म मानव को बन्धन की ओर ले जाते हैं। परन्तु निष्काम कर्म इसके विपरीत मानव को स्थिति प्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम सिद्ध होते हैं। गीता में बार-बार दोहराया गया है कि कर्म से संन्यास न लेकर कर्म के फलों से संन्यास लेना चाहिए। कर्म का प्रेरक फल नहीं होना चाहिए। यद्यपि गीता कर्म फल के त्याग का आदेश देती है फिर भी गीता का लक्ष्य त्याग या संन्यास नहीं है। इन्द्रियों को दमन करने का आदेश नहीं दिया गया है बल्कि उन्हें विवेक के मार्ग पर नियोजित करने का आदेश दिया गया है। निष्काम कर्म की शिक्षा गीता की अनमोल देन कही जाती है। निष्काम कर्म के उपदेश को पाकर अर्जुन युद्ध के लिए तत्पर हो गया।